Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education

Vol. V, Issue X, April-2013, ISSN 2230-7540

REVIEW ARTICLE

जीवन–दर्शन : स्वरूप एवं अवधारणा

www.ignited.in

Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. V, Issue X, April-2013, ISSN 2230-7540

जीवन–दर्शन : स्वरूप एवं अवधारणा

Dr. Hem Lata Sharma

Asst. Prof. J.C.M.M - Assandh Distt. Karnal, Haryana-India

----------X----------

जीवन की समग्रता को स्वयं में समेट लेने में सक्षम शब्द है –'जीवन–दर्शन'। जीवन–दर्शन शब्द दो शब्दों से मिल कर बना है–जीवन और दर्शन। 'जीवन' शब्द के अनुसार जिसमें चेतनता प्राणतत्त्व, गतिशील है, उस वस्तु में ही जीवन है। व्यावहारिक दृष्टि से जीवन का अभिप्राय 'मानव–जीवन' से लिया जाता है। विज्ञान के अन्तर्गत विश्व के समस्त प्राणियों, पशु–पक्षियों और पौधों तक में जीवन और प्राणतत्त्व की विविधता मानी जाती है।

बुद्धि–तत्त्व के कारण ही मानव को अन्य प्राणियों से सर्वश्रेष्ठ घोषित किया गया है। मनुष्य की बुद्धि ही उसके समस्त क्रियाकलापों को संचालित करती है। इसीलिए आज के बौद्धिक युग में सच्चा मानव वही है, जिसके पास अपने निजी विचार और दृष्टिकोण हो और जो अपने विचारों, अपने जीवन–दर्शन से समाज को नयी चेतनता प्रदान कर सके। वह अपने जीवन–दर्शन से समाज को स्वच्छ दृष्टि, समस्याओं से जूझने की प्रेरणा देता है।

दर्शन : शाब्दिक विवेचन, यथार्थ और आदर्श :

दर्शन आत्मा की एकाकी तीर्थयात्राा है। वह जीवन की गति एवं स्वयं जीवन है। वह मानव को कर्त्तव्य व औचित्य का बोध ही नहीं कराता वरन् उसका सर्वोच्च वांछनीय ध्येय से साक्षात्कार करा देता है।1 मानव विवेक प्रधान जीव होने के कारण इस संसार रूपी कर्मक्षेत्रा में अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए जीवन में पग–पग पर आने वाली परिस्थितियों का मुकाबला करते समय विभिन्न समस्याएँ सुलझाते समय और नाना संघर्षों का सामना करने के अवसर पर किसी न किसी रूप में अपनी विचार शक्ति का प्रयोग करता है। ये विचार जीवन और जगत् सम्बन्धी कतिपय आस्थाओं और कल्पनाओं पर आधारित होते हैं जो उसके समस्त कार्यों–विधानों के पीछे प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में अनुस्युत रहते हैं। इस प्रकार ये विचार उसका अपना दर्शन होते हैं। इसी दर्शन को हम सामान्य, विशिष्ट एवं व्यावहारिक अर्थ के द्वारा व्याख्यायित कर सकते हैं।

दर्शन का सामान्य अर्थ–दर्शन मानव समाज की जीवनगत चिरन्तरधार है। 'दर्शन' शब्द की व्युत्पत्ति 'दृश्' धातु से हुई जिसका अर्थ हुआ 'देखना'। कारण व्युत्पत्ति से दर्शन का अर्थ है–जिसके द्वारा देखा जाए अर्थात् ज्ञान प्राप्त किया जाए। भाव व्युत्पत्ति से उसका अर्थ है–ज्ञान।2 देखने का साधन चक्षु है, अतः चक्षु द्वारा देखना ही दर्शन कहलाता है। इस प्रकार 'चाक्षुष प्रत्यक्ष' दर्शन हुआ किन्तु जो वस्तुएँ नेत्राों से न देखी जाकर बुि(द्वारा समझी जाती है वे भी दर्शन की कोटि में आती है। भारतीय दर्शन को चिन्तन का नहीं अपितु अनुभूति का विषय माना गया है। इसलिए सामान्य अर्थ में अनुभूतिगम्य साक्षात् ज्ञान को दर्शन माना जाता है।

दर्शन सम्बन्धी विशिष्ट अर्थ–सामान्य अर्थ के अतिरिक्त दर्शन शब्द का एक विशिष्ट अर्थ भी प्रयोग होता है, जिसमें आत्मा, अनात्मा, जीव, ब्रह्म, प्रकृति, जगत्, पुरुष, धर्म, मोक्ष, मानव जीवन के उद्देश्य आदि का निरूपण हो।3 दर्शन के इसी विशिष्ट रूप को व्याख्यायित करते हुए विद्वानों ने विभिन्न परिभाषाएँ दी हैं– डॉ॰ बलदेव उपाध्याय 'दर्शन' शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ– 'दृश्यते अनेन इति दर्शनम्' मानते हुए लिखते हैं कि कौन–सा पदार्थ देखा जाए? वस्तु का सत्यभूत तात्विक स्वरूप क्या है? इसकी उत्पत्ति कहाँ से हुई? इसकी सृष्टि का कौन–साकारण है? यह चेतन है या अचेतन? इस संसार में हमारे लिए कौन से कर्त्तव्य है? जीवन को सुचारू रूप से बिताने के लिए कौन–सा सुन्दर साधन है। डॉ॰ रामनाथ शर्मा के अनुसार– दर्शन कुछ विशिष्ट समस्याओं को विशिष्ट विधियों से हल करने की प्रक्रिया है जिससे निष्कर्षों और परिणामों पर पहुंचा जाता है।4

दर्शन सम्बन्धी व्यावहारिक अर्थ– चट्टोपाध्याय ने दर्शन शब्द की जो व्याख्या की है वह प्रस्तुत प्रबन्ध में गृहीत 'दर्शन' शब्द के अधिक निकट होने से महत्त्वपूर्ण है। उनके अनुसार व्यक्ति के दर्शन से तात्पर्य उसकी जीवन प्रणाली को निर्धारित करने वाले समस्त विश्वासों के समूह से है। मनुष्य में चिन्तन की प्रक्रिया अनादिकाल से ही होती आई और सभ्यता के उद्भव के साथ अनेक देशों के व्यक्ति इन विषयों पर विचार करते रहे कि मनुष्य क्या है? इसके जीवन का क्या लक्ष्य है। यह संसार क्या है? इसका कोई सृष्टा भी है, मनुष्य को किस प्रकार जीवन व्यतीत करना चाहिए इत्यादि। ऐसे अनेक प्रश्न हैं जिन्हें प्रायः अनेक देशों के मनुष्य सभ्यता के प्रारंभ से ही सुलझाने की चेष्टा करते हैं। भारतीय संस्कृति में दर्शन की रुचि मनुष्य की आत्मा में है। जब दृष्टि बाहर की ओर होती है तो निरन्तर परिवर्तनशील घटनाओं का प्रवाह ध्यान आकृष्ट कर लेता है। इसके विपरीत भारत में 'आत्मानंविधि' अर्थात् 'अपनी आत्मा को पहचानो' इस सि(ान्त में धार्मिक और दार्शनिकों की शिक्षाएँ समाविष्ट हैं। व्यक्ति के अपने अन्दर वह आत्मा है जो प्रत्येक वस्तु का केन्द्र है।5

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि व्यापक अर्थ में दर्शनशास्त्रा जीवन के सभी पक्षों से सम्बन्धित है।

जीवन : शाब्दिक विवेचन, यथार्थ और आदर्श :

समय तथा समाज परिवर्तन के साथ–साथ जीवन शब्द का अर्थ बदलता रहा है। प्रारम्भ में जीवन को मात्रा अस्तित्व समझा जाता था। मनुष्य के सांस्कृतिक विकास के साथ ही जीवन का क्षेत्रा भी विस्तृत होता गया। इसी कारण विद्वानों ने मनुष्य को जैविक, दार्शनिक प्राणी मानकर जीवन की परिभाषाएँ दी है। रमेश कुन्तल 'मेघ' ने सभी पक्षियों को समेटते हुए जीवन की व्यापक एवं सुसंगत परिभाषा दी है। उनके अनुसार, फजीवन

www.ignited.in

अस्तित्व की एक प्रणाली है, जो पर्यावरण में विकसित होता है, समाज में बदलता और समय में बीतता है। इस जीवन के विशिष्ट प्रकार्य है–जैसे संगठन, शरीर और शोभा, प्रयोजनात्मकता, मूल्य और आदर्श, इच्छाएँ और कर्म की अभियमितता ;नियति, नियम, क्रमद्ध। जीवन संकल्प, संवेग और चेतना की शक्तियों का धूप छांही खेल है, जो आत्मकथा और जीवनी बनता है तथापि यह समाजैतिहासिक चक्र से समंजित है।य्6 फ्सामान्यतः 'जीवन' शब्द का अभिप्राय होता है, 'जो मृत न हो' अथवा हम कह सकते है कि जो जीवित या चेतन है वही जीवन है। इस प्रकार यदि हम वैज्ञानिक दृष्टि से देखें तो मानव से लेकर पशु–पक्षी में ही नहीं अपितु जैसा कि जगदीश चन्द्र बसु ने सि(किया है, जड़ समझे जाने वाले पेड़ पौधों आदि में भी चेतना है, किन्तु व्यावहारिक रूप में जीवन से तात्पर्य मानव जीवन से ही होता है।य्7 मानव में बु(जैसे श्रेष्ठ तत्त्व की प्रधानता के कारण वह संसार के शेष, चेतन जगत् से भिन्न एवं उच्च है तथा उसका निरन्तर यही प्रयास रहता है कि वह अतीत के अनुभवों, वर्तमान के ज्ञान एवं भविष्य की संभावनाओं के बल पर बु(की उच्चतम सीमा को प्राप्त कर ले। पाश्चात्य विद्वानों की जीवन सम्बन्धी धारणा कुछ अधिक व्यावहारिक है। टॉलस्टाय ने जीवन को ह्रास–रुदन मिश्रित कहा है। हेल्डन ने फ्वस्तुओं से किसी प्रकार की गति अथवा परिवर्तन को जीवन का चिह्न स्वीकार किया है, जिसके कारण उनके जीवित या क्रियात्मक होने का आभास मिलता है।य्8 वास्तव में जीवन शब्द अर्थ की दृष्टि से अधिक व्यापक है। यह सम्पूर्ण वैश्विक जीवन का पर्याय है। इसकी सीमा में लोक और अलोक, मानव और प्रकृति, चेतन और अचेतन सभी समाहित है। इन सबमें मानव जीवन की परिधि निश्चय है।

जीवन की सार्थकता और निरर्थकता की दृष्टि से विद्वानों और चिन्तकों ने इसे चिन्तन का विषय बना दिया है कि वह क्या है, से ऊपर क्या होना चाहिए? ही उसके चिन्तन का आधार है और इस दृष्टि से जीवन का तात्पर्य मानव जीवन के क्रिया–कलाप, चिन्तन, विकास, अन्तर्द्वन्द्व, मनोविज्ञान तथा अन्तर्दृष्टि व बर्हिदृष्टि से है। जीवन की सार्थकता क्या है? इस प्रश्न ने जीवन को गति व परिवर्तन के अनवरत चक्र से संयुक्त कर दिया है। यह गतिशीलता ही विश्व जीवन के विकास का मूलाधार है। यही परिवर्तन व्यष्टि और समष्टि का जीवन है। जीवन भी प्रवाह है अतः यह सदा एक–सा नही रहता। अवस्थाओं और दशाओं का परिवर्तन तो इसमें होता ही है, किन्तु ज्ञान और विचारों का परिवर्तन भी इसमें होता ही है। नेहरू जी ने भी कहा था–'जीवन का अर्थ ही बदलती हुई परिस्थितियों से निरन्तर सामंजस्य बनाए रखना है। ज़िन्दगी की ओर हमारे रुख का किसी न किसी तरह का नैतिक या इखलाकी आधार होना ही चाहिए। हमें होशियार इस बात से रहना चाहिए कि हम ऐसी बातों के मनन के समुन्दर में न खो जाएं–जिसका ताल्लुक हमारी रोजमर्रा की ज़िन्दगी और उसके मसनलों और इंसान की जरूरत से नहीं हैं, एक ज़िंदा पफलसपफे को ऐसा होना चाहिए कि आज के मसलों का हल पेश कर सके।9 उन्होंने संयमित नियमित जीवन को मानवता की व समृ(की निशानी मानकर जीवन को एक समझौता माना और कहा –

फ्इंसान खुदा की खुदाइ्र ना भूले तो पफले पफूले।

कुदरत की संचाई जिंदगी सजाए, पिफर मन हमेशा झूले।।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि जीवन का अभिप्राय उस रूप से है जो मानव जीवन की परिधि के अन्तर्गत निहित है जिसमें उसके क्रियाकलाप, चिन्तन और विकास से है, जिसके अन्तर्गत वह आदिकाल से आधुनिक युग तक साहित्यकारों के चिन्तन का विषय बना हुआ है।

जीवन–दर्शन से अभिप्राय :

मानव हृदय में संचित अनुभूतियाँ, उसके मस्तिष्क कोषों द्वारा गृहीत उसका ज्ञान और भविष्य की संभावनाएँ, मानव को न केवल कार्य करने की प्रेरणा देती है, अपितु प्रत्येक वस्तु के प्रति उसका अपना एक निजी दृष्टिकोण भी निर्मित कर देती है। इसी दृष्टिकोण को 'जीवन दर्शन' के नाम से अभिहीत किया जाता है। दर्शन शास्त्रा में यह एक विशिष्ट अर्थ के लिए प्रयुक्त होता है तथा विभिन्न विद्वानों ने इसकी विभिन्न परिभाषाएँ दी है।

जीवन–दर्शन पर विचार करते हुए डॉ॰ देवराज ने 'साहित्य और जीवन–दर्शन' शीर्षक लेख में इसे मूल्यों के सन्दर्भ में परिभाषित करते हुए कहा कि–फ्साहित्य के सन्दर्भ में जीवन–दर्शन से तात्पर्य है जीवन के विविध मूल्यों के सम्बन्ध में एक व्यापक और सुसंगत दृष्टिकोण।य्10

कृष्ण चन्द्र पाण्डेय के मतानुसार –फ्जीवन–दर्शन का संबंध संग्रहों और कृतियों में निर्दिष्ट सि(ान्त और आदर्शों से होता है।य्11

दयानंद पाण्डेय जीवन–दर्शन सम्बन्धी विचारों को इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं–फ्मनुष्य जिन आदर्शों, मूल्यों और मान्यताओं को केन्द्र में रखकर अपने जीवन का निर्वाह करता है, उसे ही उसका जीवन–दर्शन कहा जाता है।य्12

डॉ॰ देवराज ने एक अन्य स्थान पर इसे परिभाषित करते हुए लिखा– फ्जिस व्यक्ति ने दर्शन का कभी अर्थ नहीं समझा उसका भी अपना एक दर्शन होता है। दार्शनिक विचार उसके भी है। सिपर्फ उसे यह नहीं मालूम होता कि ऐसे विचारों को दार्शनिक विचार कहा जाता है।य्13

डॉ॰ राजेश्वर गुरु के अनुसार–फ्लेखक का जीवन के प्रति एक विशेष दृष्टिकोण होता है। इसी दृष्टिकोण से वह जीवन की व्याख्या प्रस्तुत करता है और उसी के अनुरूप उसके विचार होते हैं।य्14 यशपाल जी ने सामाजिक जीवन के प्रति उपन्यासकार के विशेष दृष्टिकोण को जीवन दर्शन की संज्ञा देते हुए कहा–फ्ये विशिष्ट दृष्टिकोण ही उपन्यास के जीवन–दर्शन के अंगरूप में उपन्यासों में अभिव्यक्ति पाते हैं।य्15

कुछ विद्वानों का मत है कि कतिपय विचारशील व्यक्तियों का ही जीवन–दर्शन होता है, सामान्य जन का नहीं किन्तु हमारे लिए यह मत नितान्त भ्रान्तिपूर्ण और आधारहीन है। 'प्रत्येक व्यक्ति का एक जीवन–दर्शन होता है। किसी भी कार्य को हम क्यों करते हैं, अथवा किसी कार्य विशेष को करने से हम अपने को रोकते हैं, यह सब हमारे जीवन–दर्शन पर आधारित है। किसी मानव के क्रियाकलाप, उसका दृष्टिकोण, झुकाव, उसके विचार, उसकी धारणाएँ एवं उसके नैतिक मानदण्ड का योगपफल ही उसका अस्तित्व है और यही उसका 'जीवन–दर्शन' है।'16 किसी व्यक्ति का मूल्यांकन सही रूप में तभी हो सकता है जबकि हम उसके निजी जीवन–दर्शन का परिचय प्राप्त कर लें, क्योंकि 'एक व्यक्ति के जीवन–दर्शन' के जाने बिना, वह सब के लिए लगभग अनभिज्ञ एवं रहस्यपूर्ण हो जाता है। व्यक्ति का जीवन–दर्शन ही उसकी विचारधाराओं तथा व्यवहार के ताले की कुंजी है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि जीवन–दर्शन पर ही किसी का आचरण एवं

www.ignited.in

उसके विचार निर्भर करते हैं। अस्तु निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि विचारधारा या जीवन–दर्शन व्यक्ति के जीवन चरित्रा तथा व्यक्ति का नवनीत है।17 इतना ही नहीं जीवन–दर्शन ही व्यक्ति के जीवन का प्रेरक, संचालक, मार्ग दर्शक एवं नियन्त्राणकर्त्ता है, वह उसकी समस्त चिन्ताओं एवं गतिविधियों का नियन्ता है।

जीवन और जीवन–दर्शन :

जीवन और दर्शन का अटूट सम्बन्ध है। 'दर्शन जीवन की गंभीर प्रवृत्ति है, समूचे जीवन की तृप्ति इसका उद्देश्य है, केवल बुद्धि का नहीं। भारत में जीवन की इस प्रवृत्ति को ही सार्थक भाव में दर्शन कहा गया है। यह मानसिक और बौ(कि व्यायाम और गवेषणा मात्रा नहीं है। यह दर्शन है–सत्य का, जीवन के तत्व का। इसलिए दर्शन–जीवन का पथ प्रदर्शक बनता है, जीवन को तृप्त करता है।18 दर्शन की सार्थकता इसी में है कि जीवन को सुनिश्चित दिशा में गति प्रदान करे। डॉ॰ एम॰ हिरियन्ना ने भी कहा था कि फदर्शन के अध्ययन का उद्देश्य केवल सै(ान्तिक जिज्ञासा की तृप्ति ही नहीं है, भले ही वह जिज्ञासा कितनी ही निरपेक्ष क्यों न हो, इसका उद्देश्य सम्यक् प्रकार का जीवन जीना भी है जिसमें व्यक्ति चेष्टापूर्वक अपनी बौ(कि धारणाओं के साथ अपने आचरण की संगति स्थापित कर सके।19 इस प्रकार दर्शन का सम्बन्ध मानवीय जीवन मूल्य और धर्म से भी है।

जीवन दर्शन–निरपेक्ष हो सकता है, लेकिन दर्शन–जीवन निरपेक्ष नहीं हो सकता, क्योंकि दर्शन की सत्ता और महत्ता जीवन की सापेक्षता में ही है। जो दर्शन जितना ही जीवन–सापेक्ष होगा, वह उतना ही अधिक मूल्यवान और सार्थक होगा। इस प्रकार दर्शन का स्रोत भी जीवन है और साध्य भी जीवन है। मानव हृदय में संचित अनुभूतियाँ, उसके मस्तिष्क कोषों द्वारा गृहीत ज्ञान और भविष्य की संभावनाएँ, मानव को कार्य करने की प्रेरणा देती है। इसी दृष्टिकोण को 'जीवन–दर्शन' नाम से अभिहीत किया जाता है। प्रत्येक व्यक्ति का अपना एक जीवन–दर्शन होता है।

जीवन–दर्शन सदैव स्थिर या अपरिवर्तनशील रहे, यह भी सम्भव नहीं। ज्यों–ज्यों व्यक्ति का ज्ञान, अनुभव एवं बोध व्यापक होता चला जाता है, त्यों–त्यों उसका जीवन दर्शन भी विकसित होता चला जाता है। विभिन्न घटनाओं, अनुभवों से व्यक्ति के जीवन–दर्शन में भी परिवर्तन संभव है।

अतः कह सकते हैं कि व्यक्ति की सब चीजों को जानने और समझने की प्रबल इच्छा की अभिव्यक्ति जो कि उसका दर्शन मानी जाती है, जीवन शब्द के साथ जुड़कर गत्यात्मक और विकासोन्मुख होकर दर्शन के प्रचलित अर्थ से भिन्न अर्थ में प्रयुक्त होने लगती है, यही अभिव्यक्ति जीवन–दर्शन मानी जाती है। अतः दर्शन ही जीवन शब्द के साथ जुड़ जाता है और यह विचारधारा रूढ़ और स्थिर हो जाती है।

जीवन–दर्शन के नियामक तत्त्व :

दर्शन एक ऐसा अध्यात्मिक ज्ञान है जो आत्मा रूपी इन्द्रिय के समक्ष सम्पूर्ण रूप में प्रकट होता है। आत्मा की पवित्राता से ही दर्शन शास्त्रा के विषय में उच्चतम विजय प्राप्त हो सकती है और इस पवित्राता का आधार है अनुभव की प्रगाढ़ता, जो केवल उसी आस्था में साक्षात् हो सकती है जो मनुष्य को अन्तर्निहित उस शक्ति की उपलब्धि करा सके तथा इसी अन्तस्तम विकास से ही दार्शनिक हमारे सामने जीवन के सत्य को प्रकट करता है। उस सत्य को जो केवल बुद्धि द्वारा प्रकाश में नहीं आ सकता। इस प्रकार दर्शन शक्ति लगभग ठीक उसी प्रकार स्वाभाविक रूप में उत्पन्न हो जाती है, जैसे पूफल से पफल की उत्पत्ति और इसका उत्पत्तिस्थान व रहस्यमय केन्द्र है जहाँ सब प्रकार के अनुभवों का सामंजस्य होता है।20 किसी भी व्यक्ति की जीवन–दर्शन सम्बन्धी मान्यताएँ उसके विचार तथा स्वभाव के आधार पर भी निर्मित होती है तथा उसके स्वभाव एवं विचार उसके अपने निजी अनुभवों पर बनते बिगड़ते रहते हैं किन्तु उसके साथ ही कुछ अन्य तत्त्व ऐसे भी हाते हैं जो उसके जीवन दर्शन के नियामक तत्त्व सिद्ध होते हैं। जो अधोलिखित है– पनित्य तथा अनित्य के मध्य भेद का ज्ञान–इसका अर्थ यह नहीं कि उसे पूरा ज्ञान होना चाहिए क्योंकि वह तो अन्त में ही प्राप्त होता है बल्कि अन्वेषक के अन्दर प्रश्नात्मक जिज्ञासानुभव का होना आवश्यक है। इसके साथ ही ध्यान लगाने की प्रवृत्ति लेना आवश्यक है जिससे कि वह अपने मन को विचलित न होने दें।

कर्मपफल की प्राप्ति की इच्छा का दमन – दर्शन के नियामक तत्त्वों में दूसरा साधन है। चाहे यह कर्मपफल इस जन्म में या अगले जन्म में मिले अर्थात् हर प्रकार की छोटी से छोटी इच्छाओं व निजी प्रयोजनों का सर्वथा त्याग हो। बुि(का ठीक दिशा में उपयोग है–वस्तुओं को, चाहे वे अच्छी हों या बुरी, ठीक–ठाक समझना।

युगीन परिस्थितियाँ – व्यक्ति के जीवन–दर्शन को बनाने में युगीन परिस्थितियाँ भी सहायक रहती हैं। वह जिस युग में रहता है उससे कुछ सीखता है और भविष्य के लिए कुछ प्रेरणा प्राप्त करता है। युग के विकास के साथ–साथ उसके जीवन–दर्शन का भी विकास होता है।

घटनाएँ–प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में कुछ ऐसी घटनाएँ घटित होती हैं जो उसकी जीवन–धारा में परिवर्तन ला देती है। ये घटनाएँ भी जीवन–दर्शन के निर्माण में सहायक होती है।

शिक्षा–दीक्षा – प्रत्येक व्यक्ति को जैसी शिक्षा मिलेगी उसी के अनुरूप ही उसका जीवन सम्बन्धी दृष्टिकोण होगा।

सामाजिक अनुभव – मनुष्य समाज में रहते हुए, उस समाज की प्रथाओं, संस्कारों तथा समस्याओं से परिचित होता है। उन प्रथाओं तथा संस्कारों से वह कुछ सीखता है और भविष्य के लिए प्रेरणा प्राप्त करता है और अपने अनुभव और चिन्तन के सहचर्य से अपनी मानसिक धारणाओं के अनुकूल एक मौलिक जीवन–दर्शन का निर्माण करता है। जातिगत संस्कार–व्यक्ति को अपने वंश, जाति और वर्ग से जैसे संस्कार प्राप्त होते हैं उसी के अनुरूप ही व्यक्ति का जीवन दर्शन निर्मित होता है। यदि वंशगत संस्कार उच्च हैं तो उसका जीवन के प्रति दृष्टिकोण उच्च होगा। यदि संस्कार बुरे हैं तो उसका जीवन भी निम्न कोटि का होगा। यही संस्कार, वर्गीय नैतिकता, चरित्रा, शक्ति, सीमाएँ कलाकार के ;जीवनद्ध सृजनात्मक लेखन का आधार होती है। बल्कि उसे पीठिका देने वाले आलोचना, विलोचन का केन्द्र बिन्दु भी बनते हैं। मुक्ति बोध के अनुसार –'जो परिवार के मूल्य होंगे वे जीवन में होंगे ही और वे साहित्य में भी उभरेंगे। हाँ यह सही है कि साहित्य में आकर उसकी रूपरेखा बदल जाएगी किन्तु उसके तत्त्व कैसे बदलेंगे। जिन्दगी के जो रुख हैं, जो रवैये है, जो एटीट्यूज है, वे

साहित्य में प्रकट होंगे। . . . साहित्य विवेक मूलतः जीवन विवेक है।य्21

धर्म तथा संस्कृति –तत्कालीन धर्म तथा देश की संस्कृति भी व्यक्ति के जीवन–दर्शन को प्रभावित करते हैं।

इन सबके अतिरिक्त रचनाकार निजी जीवन के साथ–साथ सामाजिक जीवन भी जीता है। वह समाज–विकास की विशेष अवस्था में जन्म लेता है। प्रत्येक समाज की, समय की युग चेतना होती है 'हर युग में कुछ पक्षपात होते हैं, कुछ पूर्वमान्यताएँ/अनिवार्य रूप से ये मान्यताएँ लेखक के वैचारिक ढांचे में प्रवेश पा जाती हैं।22 जो व्यक्ति अथवा लेखक के निजी जीवन तथा बोध प्रक्रिया पर असर डालती है। वे मूलभूत जीवन तथ्य इतने विस्मृत होते हैं कि उनके चंगुल से, प्रभाव से, उनके संवेदनात्मक अनुभव से बचा नहीं जा सकता।23

निष्कर्ष :

निष्कर्षतः जीवन की गंभीर प्रवृत्ति दर्शन मान सकते हैं, समूचे जीवन की तृप्ति इसका उद्देश्य है केवल बुि(की नहीं। भारत में जीवन की इस प्रवृत्ति को ही सार्थक भाव में जीवन–दर्शन कहा गया है। यह मात्रा मानसिक और बौद्धिक व्यायाम और ग्वेष्णा मात्रा नहीं कह सकते बल्कि दर्शन है–सत्य का, जीवन के तत्त्व का। इसी कारण दर्शन जीवन का पथ–प्रदर्शक बनता है और जीवन को तृप्त करता है तथा इस दर्शन का मुख्य लक्ष्य सृजनात्मक हो तभी सार्थक माना जा सकता है अन्यथा अपने निष्क्रिय रूप में यह उस अश्व की भांति है जो सर्वगुण होने पर भी निष्प्राण है। इसे समय की चेतना का प्रतिबिम्ब प्रस्तुत करना मात्रा नहीं वरन् उस चेतना की प्रगति में सहायक भी होना है। क्योंकि बदलते जीवन मूल्य और परिवेश के कारण व्यक्ति के जीवन–दर्शन में बदलाव आता रहता है और साहित्यकार जो कि अन्य व्यक्ति की अपेक्षा अधिक संवेदनशील होता है उसका जीवन–दर्शन अधिक प्रभावशाली होता है। अतः साहित्यकार व्यक्ति विशेष के जीवन–दर्शन को जनता तक पहुंचाने में सेतु का कार्य करता है। इस कारण यह आवश्यक है कि वह सत्य के सापेक्ष स्वरूप की व्याख्या करे। देशकाल, परिस्थितियों के अनुरूप सत्य का स्पष्टीकरण करे। ट्टषि मुनियों की दिव्य अनुभूतियों को विगत का सत्य ;मानकरद्ध और ऐश्वर्य मानकर संतोष न कर ले वरन् उन्हें आज के युग एवं परिवर्तित होते हुए समय की पृष्ठभूमि पर स्थापित करे, क्योंकि साहित्यकार का जीवन–दर्शन जितना शाश्वत होगा, उसका साहित्य उतना ही सार्वभौमिक होगा।

आधार–सूची :

1. शांति जोशी, राधकृष्णन का विश्वदर्शन, पृ. 37

2. तुलसी दर्शन मीमांसा, पृ. 17

3. संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ, पृ. 510

4. सुरेन्द्र बालिंगे, राजेन्द्र प्रसाद, ;दर्शन और सामाजिक परिवर्तन : एक दृष्टिकोणद्ध,

5. डॉ॰ सर्वपल्ली राधकृष्णन, भारतीय दर्शन, विषय प्रवेश, पृ. 22–23

6. रमेश कुन्तल, क्योंकि समय एक शब्द है, पृ. 345

7. बिहारी : व्यक्तित्व एवं जीवन–दर्शन, रमेश चन्द्र, पृ. 116

8. जे॰वी॰ हेल्डन, जीवन क्या है, पृ. 50

9. ईश्वर सिंह शिक्षक, जीवन नावरि, पृ. 55

10. डॉ॰ देवराज, साहित्य और संस्कृति, पृ. 75

11. कृष्णचन्द्र पाण्डेय, प्रेमचंद के जीवन–दर्शन विधयक तत्त्व, पृ. 17

12. सं॰ दयानंद पाण्डेय, प्रेमचंद का व्यक्तित्व और रचना, पृ. 96

13. डॉ॰ देवराज, दर्शनशास्त्रा की रूपरेखा, पृ. 11

14. यशपाल, मार्क्सवाद, पृ. 217

15. कार्लिस लेमान्त, पिफलॉस्पफी ऑपफ ह्यूमनिज्म, पृ. 7

16. प्दजतवकनबजपवद वि चेपसवेवचीलए इल डंग त्वेमदइमतलए च्ण्3

17. बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', व्यक्तित्व एवं काव्य, लेखक डॉ॰ लक्ष्मीनारायण दुबे, पृ. 124

18. अर्जुन मिश्र, दर्शन की मूल धराएँ, पृ. 3

19. क्तण भ्पतपलंददंए जैम भ्मदजपंस वि प्दकपंद चेपसवेवचीलए च्हम.25

20. डॉ॰ राधकृष्णन, भारतीय दर्शन, पृ. 36

21. मुक्ति बोध, साहित्य की डायरी, पृ. 88

22. डॉ॰ देवराज, साहित्य समीक्षा और सांस्कृतिक बोध, पृ. 56

23. मुक्ति बोध, कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबन्ध

www.ignited.in